* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ९ } गौराब्द ४७७, मास—हृषिकेश १२, वार—क्षीरोदशायी
शनिवार, ३१ श्रावण, सम्वत् २०२०, १७ अगस्त १९६३ } संख्या ३

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमंगल स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठक्कुर भक्तिविनोदकृत]

(६)

सेवां गापप्रशमनमतिः कण्टके गापमाते लोकेशाभिप्रभवमति यः केशवान्यासलिङ्गम् ।
लेभे लोके गरुणविदुषां पूजनीयोवरेण्यस्तं चैतन्यं कचविरहितं दण्डहस्तं स्मरामि ॥३५॥

त्यक्त्वा गेहं स्वजनसहितं श्रीनवद्वीपसूनो नित्यानन्दप्रणयवशगः कृष्णचैतन्यचन्द्रः ।
भ्रामं भ्रामं नगरमगकक्षान्तिपूर्वं पुरं यस्तं गौराङ्गं व्रजजिगमिषाविष्टमूर्त्तिं स्मरामि ॥३६॥

तत्रानीतात्वजितजननी हर्षशोकाकुला सा भिक्षांदत्वा कतिपयदिवा पालयामास सूनुम् ।
भक्त्या यस्तद्विधिमनुसरन् क्षेत्रयात्रां चकार तं गौराङ्गं भ्रमणकुशलं न्यासिराजं स्मरामि ॥३७॥

नित्यानन्दो विबुधजगदानन्द दामोदरौ च लीलागाने परमनिपुणौ दत्तसूतौ मुकुन्दः ।
एते भक्ताश्चरणमधुपा येन सार्द्धं प्रचेलुस्तं गौराङ्गं प्रणतपटलं श्रेष्ठमूर्त्तिं स्मरामि ॥३८॥

त्यक्त्वा गङ्गातटजनपदां श्याम्बुलिङ्गं महेशं श्रीद्रे देशे रमणविपिने क्षीरचौरं ददर्श ।
गोपालं वै कटकनगरे यो ददर्शात्मरूपं तं गौराङ्गं स्वभजनपरं भक्तमूर्त्तिं स्मरामि ॥३९॥

एकाम्राख्ये पशुपतिवने रुद्रलिङ्गं प्रणम्य यातः कापोतकशिवपुरं स्वस्यदण्डं विहाय ।
नित्यानन्दस्तु तदवसरे यस्यदण्डं बभञ्ज तं गौराङ्गं कपटमनुजं भक्तभक्तं स्मरामि ॥४०॥
भग्नेदण्डे कपटकुपितस्तान् विहाय स्ववर्गनिकोनीलाचलपतिपुरं प्राप्य तूर्णं प्रभुर्यः ।
भावावेशं परममगमत् कृष्णरूपं विलोक्य तं गौराङ्गं पुरटवपुषं न्यस्तदण्डं स्मरामि ॥४१॥
भावास्वादप्रकटसमये सार्वभौमस्य सेवा तस्यानर्थान् प्रकृतिविपुलान् नाशयामास सर्वान् ।
तस्माद् यस्य प्रबलकृपया वैष्णवोऽभूत् स चापि तं वेदार्थ-प्रचरणविधौ तत्त्वमूर्तिं स्मरामि ॥४२॥

पद्यानुवाद—

[परलोकगत पं० मधुसूदनदास गोस्वामी कृत]

तिनके पाप प्रशामहित नगर कण्टोआ जाय ।
वयस बरस चौबीसमें माघ पंचमी पाय ॥
केशव भारतिके निकट लीयौ प्रभु संन्यास ।
जग पूजित धारन कियौ दण्ड गेरुआ वास ॥
नाम 'कृष्णचैतन्य' कर करुआ मुख हरिनाम ।
अलक शिखा प्रभु शीसतें कीने अन्तर धाम ॥३५॥
अधिक आन आवेश प्रभु वृन्दावन चलि जाय ।
नित्यानन्द कौशल बड़े राखे तहीं फिराय ॥
भ्रमे राढ़ में तीन दिन प्रभू बिना जल अन्न ।
भानुसुताके भाव 'सुर सरिता' परस प्रसन्न ॥
आचारज अद्वैतके भवन शान्तिपुर लाय ।
बैठारे चैतन्य प्रभु नित्यानन्द सुख पाय ॥३६॥
प्रभु जननी आई तहाँ आकुल आनन्द शोक ।
भई भीर भारी जुरे देखन कोटिक लोक ॥
जननी भिक्षा दई राख कछुक दिन पास ।
आज्ञा सुत को दई माँ श्रीनीलाचल वास ॥३७॥
पण्डित जगदानन्द दामोदर नित्यानन्द ।
चार भक्त प्रभु संग चले गायक प्रवर मुकुन्द ॥३८॥
तज गंगा तट जान पद छत्रभोग में जाय ।
अबुलिंग शिवके दरस कीये अति सुख पाय ॥
क्षीर चोर श्रीगोपीनाथ 'रमण वन' माँहि ।
लखे जाय 'गोपाल' पुन कटक नगर सर साँहि ॥३९॥
एक आम्र पशुपति विपिन जाय रुद्र शिर नाय ।
गये 'कपोतेश्वर' दरश भक्तन दण्ड गहाय ॥
तहँ श्रीनित्यानन्द प्रभु कियौ दण्ड सो भङ्ग ।
दियो विसर्जन नदीमें को जानत यह रङ्ग ॥४०॥
दण्ड भङ्ग तें कुपित प्रभु सब सङ्गिन तज दीन ।
नीलाचल कौं दौड़ प्रभु इकले चले प्रवीन ॥
भयौ भाव आवेश अति लखि नीलाचल चन्द ।
दौरे आलिङ्गन करत गिरे मूरछा छन्द ॥४१॥
सेवे सार्वभौम तहँ पधराये निजगेह ।
परिचरया करिवे लगे प्रतिदिन परम सनेह ॥
मेंटे भट्टाचार्य के सब कुतर्क हरिराय ।
किये वैष्णव परम सो 'श्रुतिशिर' अर्थ बुझाय ॥
वेद अर्थ वर्णन कियौ नास सकल भ्रमजाल ।
आप वेद कर्त्ता प्रभू चिद्घन रूप विशाल ॥४२॥

(क्रमशः)

अलौकिक भक्त-चरित्र

श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुरने 'श्रीकृष्ण संहिता' नामक ग्रन्थ की रचना की है। मैंने उस ग्रन्थका उपसंहार अंश पाठ किया। यह ग्रन्थ हमारे हृदयाकाशमें ध्रुव-तारेकी भाँति उदित होकर हमारे उत्तरा-पथका प्रद-र्शन करेगा। जिस प्रकार समुद्रमें भटकते हुए जहाज के लिए ध्रुवतारा ही दिशा-निर्णय करनेका एकमात्र सहारा होता है, अथवा उस समय कम्पास नामक यंत्र सब समय उत्तर दिशाका निर्देश करता हुआ पथ प्रदर्शन करता है, उसी प्रकार भव-समुद्रमें दिशा भूलकर इधर-उधर भटकनेवाले जीवोंके लिए उक्त ग्रन्थ ध्रुवतारे और कम्पासके समान है। ठाकुर भक्ति-विनोद कहते हैं:—"प्रेमी भक्तपुरुष सर्वदा कृष्ण सेवामें तत्पर होते हैं। उनके अलौकिक चरित्रको सीमाबद्ध करनेकी चेष्टा व्यर्थ है। इसीलिए गीतामें 'अपि चेत् सुदुराचारो' श्लोककी अवतारणा की गई है। भक्तिविनोद ठाकुरके विचारकी अवहेलना करने से हम सदाके लिए गुरुपादपद्मसे दूर हो जायेंगे। उस समय हम यह समझ नहीं पायेंगे कि श्रीरूपगोस्वामी ने 'न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्' क्यों कहा है? श्रीगुरुपादपद्मसे पृथक् होने पर 'यस्य देवे पराभक्ति' श्रुतिमंत्रका अर्थ ग्रहण करनेमें हम असमर्थ हो पड़ेंगे।

"प्रेमी भक्तपुरुषोंके चरित्रमें अनेक वितर्कोंकी गुंजाइश है" इस कथनकी यदि हम आलोचना न करें, तो हम श्रीरूपगोस्वामीके कहे वाक्यका अर्थ समझ नहीं सकेंगे और न गीताके "अपि चेत् सुदु-राचारो" श्लोकका ही अर्थ समझ सकेंगे।

ईश्वरसे विमुख होनेके कारण हम तर्कप्रिय हो गये हैं। हम प्रत्येक विषयको तर्कसे समझनेकी चेष्टा करते हैं। इसलिए जब हम प्रेमी भक्तोंके चरित्रकी आलोचना करते हैं, उस समय उनको मर्त्य या प्राकृत विचारके अन्तर्गत लाकर उनके चरित्रको भी तर्क-वितर्ककी कसौटी पर कसना चाहते हैं। जब हम इन्द्रियज-ज्ञानके द्वारा प्रेमी भक्तपुरुषोंका दर्शन कर उनको भी अपने ही समान समझते हैं, तब हमें यही जानना चाहिए कि हमारी अनर्थ-निवृत्ति अभी तक नहीं हुई है। उस समय हम अजातप्रेम व्यक्ति को 'प्रेमीभक्त' और प्रेमीभक्त पुरुषको अजातप्रेम-अभक्त मानकर उन दोनोंकी तुलना कर बैठते हैं। यही कर्म-क्षेत्रकी अवस्था है। सेवा-बुद्धिके अभावमें हमारी ऐसी ही दुर्दशा होती है। भाग्यहीन व्यक्ति का एकमात्र उपास्य (Mental speculation) या वितर्क ही है।

जिस समय हमारे हृदयमें प्रेमका स्वरूप प्रका-शित होगा, उसी समय शुद्धभक्त हमें अपने समाज में ग्रहण कर लेंगे। प्रीतिके अभावमें प्रेमीभक्तोंके समाजसे पृथक् होकर भीमभट्ट हो पड़ेंगे।

भीमभट्ट, अनिरुद्ध भट्ट, हलायुध आदि स्मार्त-गण हमें कर्मी बनाकर प्रेमका विरोधी बना देंगे, जिस समय हम प्रेमके विद्युत-स्वरूपसे वंचित होकर अन्ध-

कारका आदर करेंगे, उस समय हम प्रेम-विरोधी हो पड़ेंगे। जिस प्रकार अन्धकारके प्रशंसक प्रकाशका विरोध करते हैं, जिस प्रकार सम्भोगमें प्रमत्त व्यक्ति विप्रलम्भ रसका स्वरूप निर्णयमें वितृष्ण होता है, उसी प्रकार प्रेमभक्तिके अभावमें प्रेमभक्तिके प्रति विद्रोह पोषण कर 'प्रेमी भक्त विधि बाध्य नहीं हैं'—इस कथनको समझ नहीं सकेंगे। इसलिए चाहे कोई व्यक्ति प्रेमी भक्त हो या न हो, अभक्त उनके सम्बन्धमें अवश्य ही तर्क-वितर्क करेंगे।

संसारमें मनोधर्मियोंके द्वारा प्रेमभक्तिका विरोध ही किया जाता है। जागतिक ज्ञान प्रबल होनेसे मत्सरताका उदय होता है। उस समय हम गुरुको 'लघु' समझते हैं—भक्तको अपनेसे नीच समझते हैं; उसी समय हमारा सर्वनाश हो जाता है। जिस प्रेमी-भक्तके गान किये हुए एवं अनुष्ठित आदर्श चरित्रसे मुग्ध होकर हम उनकी सेवा करनेके लिए अग्रसर हुए हैं, उसी प्रेमरज्जुका छेदनकर कर्मराज्यमें प्रवेश करने का हमारा जो प्रयास है, उसमें वितर्क रूपी खड्ग ही मेरा जीवनका विनाश करता है।

भक्तिविनोद ठाकुरका कहना है—"वास्तविक प्रेमी भक्तोंका चरित्र अत्यन्त निर्मल होने पर भी नितान्त स्वाधीन है।" हम अनर्थयुक्त जीव प्रेमभक्ति-रहित कर्मपथमें विचरण करने जाकर भक्तिका स्वरूप-निर्णयमें असमर्थ होकर भोगपर ज्ञान को भक्ति समझकर प्रेमी भक्तोंका निर्मल चरित्र देख नहीं पाते। हम सोचते हैं कि गुरुके अत्यन्त विशुद्ध सेवकमें भी मलिनता प्रवेश कर गई है, इसलिए वे शुद्ध सेवक नहीं हैं। परन्तु वास्तवमें प्रेमीभक्त जो व्यवस्था करते हैं, वही यथार्थ व्यवस्था है। गीतामें यही दिखलाया गया है। प्रेमीभक्तोंकी व्यवस्थामें तनिक भी त्रुटि देखनेसे हम विपथगामी हो पड़ते हैं। प्रेमभक्तोंका चरित्र एवं क्रिया-कलाप अत्यन्त निर्मल होनेके कारण विधिके अधीन नहीं होते। "मैं कर्मी हूँ, कर्मफल भोग करना ही मेरे लिए उचित है, संसारके सभी व्यक्ति कर्मफलाधीन हैं, इसलिए विधि से स्वाधीन होकर किसी भी प्रेमी-भक्तका निर्मल चरित्र नहीं हो सकता"—ऐसा कुविश्वास ही हमें राहुग्रस्त चन्द्रकी तरह या काँच कीड़ेके द्वारा पकड़े गये तैल कीड़े की तरह आतङ्कित करता है। किन्तु प्रेमी भक्तका थोड़ा सा अनुग्रह भी हमारे इस दुर्दैव को सदाके लिए दूरकर उनके चरित्रकी निर्मलता एवं स्वाधीनताको दिखला देता है।

जिन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृतके अन्त्यलीलाके "आश्लिष्य वा पादरतां" श्लोकके श्रीकविराज गोस्वामीकृत अनुवादको पढ़ा है, वे जानते हैं कि पतिव्रता नारी अपने पतिकी सेवा शुश्रूषाके लिए वेश्या की सेवा करनेके लिए भी प्रस्तुत रहती है। इसलिए स्वाधीन प्रेमीभक्त प्रेम रहित सत्कर्मीकी दृष्टिमें आक्रमण करने योग्य होता है। वितर्क प्रिय कर्मी अपने अशान्त चित्तमें प्रेमीभक्तके चरित्रकी निर्मलता या स्वाधीनताकी धारणा कर नहीं पाते। वे भक्तोंके चरणोंमें अपराध कर बैठते हैं।

भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेके लिए जो लोग प्रतिष्ठाशा एवं कनक-कामिनीके भोगका परित्यागकर सेवोन्मुख हुए हैं, उनके चरित्रमें कभी भी मलिनता प्रवेश कर नहीं सकती—भक्तोंका यह दृढ़ विश्वास

है। प्रेमीभक्त कृष्णानुराग या कार्ष्णानुरागमें सर्वदा ही स्वाधीन हैं। अधीनताके अकल्याण या मलिनता की हेयता कभी भी प्रेमीभक्तोंमें संभव नहीं है। वे प्रेममें उन्मत्त होकर जो भी अनुष्ठानादि करते हैं, उसे क्षुद्र बुद्धिवाले केवल-नैतिक मनुष्य समझ नहीं पाते।

ठाकुर भक्तिविनोद कहते हैं—"प्रेमीभक्त पुरुषोंके चरित्रकी निर्मलता या स्वाधीनताके ऊपर विधि या युक्तिका प्रभुत्व कभी भी स्वीकृत नहीं हो सकता।" जो अनन्य भजन नहीं करते, उनके लिए वैधी भक्तिका विधान है। रागानुगा भक्तिकी युक्तिको वैधाभक्ति करनेवाले समझ नहीं सकते। जब तक अनर्थयुक्त मानव वैधी विचारमें आबद्ध रहते हैं, तब तक उनमें मनोधर्मके विचार प्रबल होते हैं। इसलिए इस अवस्थामें उनके विचार संकुचित रहते हैं।

अपने शिष्यके कल्याणके लिए मुक्तपुरुषोंके जो शासन वाक्य होते हैं, वे ही विधियाँ हैं। परन्तु ये विधियाँ परममुक्त प्रेमीभक्तके लिए भी हैं तथा प्रेमीभक्तको भी सर्वदा इन विधियोंके अधीन रहना चाहिए—ऐसा सोचना युक्तिसंगत नहीं है। विधि और युक्तिका निर्मल एवं स्वाधीन चरित्रयुक्त प्रेमीभक्तोंके ऊपर प्रभुत्व करना तो दूर रहा, वे नित्यकाल उनकी सेवा करनेसे ही कृतार्थ और सार्थक होते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं—"प्रेमीभक्तोंके चरित्रके सम्बन्धमें तर्क-वितर्क कर उन्हें शास्त्र या सम्प्रदाय-प्रणालीके वशीभूत करनेकी चेष्टा मूर्खता ही है। वे शास्त्र या सम्प्रदाय-प्रणालीके अधीन नहीं हैं।" शास्त्र अनर्थयुक्त जीवोंके लिए—सम्प्रदायबद्ध भगवत्-बहिर्मुख जीवोंके शासनके लिए है। प्रेमीभक्त मुक्त-पुरुषगण शास्त्र या सम्प्रदाय प्रणालीके अधीन नहीं होते। शास्त्र या सम्प्रदाय-प्रणाली विधि या युक्ति अवलम्बनपूर्वक अवैध अभक्तोंके ऊपर शासन करनेके लिए हैं। अभक्तगण कभी भी प्रेमीभक्तोंके चरित्रके सम्बन्धमें वितर्क करने या उपदेश देनेके अधिकारी नहीं हैं।

जब महामुक्त शिरोमणि गोपीश्रेष्ठा श्रीमती राधारानीजी रासस्थलीमें एकत्रित गोपियोंके प्रणय-बन्धनको छिन्न कर चली गईं, तब गोपियोंने जिस विधि या युक्तिको अवलम्बन करके अनर्थमय विचार से छुटकारा पानेकी लीलाका अभिनय किया था, वह सब प्रकारसे विवेचनीय है। यदि कृष्णकी स्वतन्त्रता, कृष्ण-प्रेष्ठकी स्वाधीनता, उनके चरित्रकी निर्मलता एवं स्वाधीनतामें यदि कोई दोष या त्रुटि दिखलावे, तो उस त्रुटि या दोष निर्देशक व्यक्तिके विचारोंका अनुमोदन शुद्धभक्त कदापि नहीं करते।

ईश्वर-विमुख दण्डनीय जीवके लिए ही पृथिवी और पार्थिव विचार हैं। उनके लिए ही शास्त्र एवं सम्प्रदायकी विधियाँ हैं, नित्य-सेवक प्रेमीभक्तोंके लिए नहीं हैं। शास्त्र और सम्प्रदायके निगड़-स्वरूप विधियाँ उन्हें बाँध नहीं सकतीं। प्रेमीभक्त जब देखते हैं कि वैध-विचारपर और शास्त्रानुग-ब्रुवगण शास्त्रोंके भारवाही होकर अपनी-अपनी इन्द्रिय-वृत्तियोंको चरितार्थ कर रहे हैं, तब प्रेमीभक्त उन भारवाहियोंकी शिक्षा एवं उनकी विधि बाध्यतामें अत्यन्त आग्रह या प्रयासका उपहास करनेके लिए

जो वञ्चना या विप्रलिप्साका अभिनय करते हैं, उसके द्वारा भारवाहियोंकी परीक्षा होती है; उससे सारग्राही प्रेमीभक्तोंका तनिक भी अहित नहीं होता।

ॐविष्णुपाद गुरुवर कुलिया-प्रवासी प्रेमीभक्तराज (श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज) एक दिन अपने अनुगत जनोंसे कहा था कि प्राकृत सहजिया लोगोंकी सब तरहसे प्रशंसा करना ही हमारा कर्त्तव्य है। तब यदि गुरुवर्ग प्राकृत सहजियाओंके कल्याणके लिए जो विधियाँ बनाते हैं, उन विधियोंको अवलम्बन कर यदि अप्राकृत सहज भक्तिमान व्यक्ति सर्वदा प्राकृत साहजिकधर्मयुक्त व्यक्तियोंके साथ कलह करते हैं, तो इसमें मङ्गलकी संभावना नहीं है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति सर्वदा प्राकृत साहजिक धर्मयुक्त व्यक्तियोंको उनके नियमिचारके द्वारा प्रवञ्चना करेंगे। इस तरहकी प्रवञ्चना प्राकृत सहजियाओंकी दुर्बुद्धिको दूर करनेके लिए अमोघ औषधि है। किन्तु इसीलिए अप्राकृत सहजधर्मयाजी प्रेमीभक्तगण अपनेको प्राकृत सहजियाओंकी श्रेणीमें नहीं रखेंगे।

प्रेमीभक्तोंकी इस तरहकी उक्तियाँ शास्त्र या प्रचारित सम्प्रदाय प्रणालीके द्वारा अनुमोदित नहीं हैं, इसलिए प्रेमीभक्त प्राकृत साहजिकगणोंकी वञ्चना नहीं कर सकते, ऐसी बात नहीं है। प्रेमीभक्त कृष्णप्रेमके बाध्य हैं। वे अनर्थयुक्त जीवकी विधि या युक्तिके अधीन नहीं हैं। इसलिए अनर्थयुक्त जीवोंको शास्त्र-विधिका परित्याग नहीं करना चाहिए। उनके उत्तम अधिकार होनेसे वे समझ पायेंगे कि शास्त्र या सम्प्रदाय-प्रणाली अनर्थयुक्त जीवके लिए है। विद्यालय विद्यार्थियोंके लिए है, न कि विद्यापारङ्गत विद्वानोंके लिए। विद्यापारङ्गत व्यक्ति वहाँ शिक्षा देंगे। विद्यार्थियोंकी अवस्थामें अवस्थित व्यक्तियोंको स्वयं गुरु बनना, बुद्धिमत्ताका परिचय नहीं है। इसलिए "अपि चेत् सुदुराचारो" या "न प्राकृतत्त्वमिह" श्लोककी अवतारणा है।

विधिका उल्लंघन करना ही रागानुगा भक्तिकी प्रकृति है। किन्तु ऐसा उल्लंघन हरि-गुरु-वैष्णवोंकी केवल सेवाके लिए ही है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर इन सब बातोंका विचार कर प्रेमीभक्तके सम्बन्धमें कहते हैं—"उनके कर्म दयासे प्रेरित होते हैं और उनका ज्ञान स्वभावतः निर्मल होता है।" भगवत्पार्षद शुद्ध कृष्णसेवकगण जीवोंके कल्याणके लिए पृथिवीमें अवतरित होकर जीवों पर दया करनेके लिए जीवोंके कर्मपाश या फलभोगकी पिपासाको दूर करते हैं एवं निर्भेदब्रह्मानुसन्धानसे निवृत्त कराकर निर्मल सेवाका सुयोग देते हैं। उस समय वे अपने निर्मल आत्मस्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर प्रेमीभक्तोंकी दयाकी उपलब्धि करते हैं।

निर्दय अन्याभिलाषी, निर्दय कर्मी या निर्दय ज्ञानीके विचारमें जिस दयाका परिचय मिलता है, उसकी परीक्षा करने पर प्रेमीभक्तोंकी दयाकी निर्मलता और स्वाधीनता, उनके पारमार्थिक विचार, विधि या स्वतन्त्रताका वैशिष्ट्य, सब अपने आप स्पष्ट हो जाते हैं। श्रीदामोदरस्वरूपजीने "आपेक्षिक दया" को "मन्दोदय दया" कहा है। वे श्रीगौड़ीय-वैष्णवोंके एकछत्र स्वामी हैं। उनसे ही दयाका स्वरूप जानना चाहिए। दयाका स्वरूप जाननेसे ही प्रेमी-

भक्तोंके चरित्रके प्रति श्रद्धालु होकर उनका उद्देश्य या अभिप्राय जाननेकी अभिलाषा होगी। उस समय वितर्कके स्थान पर श्रौत-पथ ही हमारी दृष्टिको आकर्षित करेगा।

ठाकुर भक्तिविनोद कहते हैं—"प्रेमीभक्त पुरुष पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि द्वन्द्वोंसे अतीत होते हैं। जड़देहमें रहकर भी वे अपनी आत्मसत्तामें वैकुण्ठका ही सर्वदा दर्शन करते हैं।" जीवों पर दया करनेके लिए भगवद्भक्त जड़देहमें रहनेकी लीला करते हैं। वे स्वयं फल भोगनेके लिए कोई कार्य नहीं करते। वे पाप और पुण्य आदि जड़देहगत भूमिकाद्वयमें आबद्ध नहीं होते। पार्थिव धर्म और अधर्मके विवदमान विचार-समूह उनको पराभूत नहीं कर सकते। वे द्वन्द्वातीत हैं।

प्रेमीभक्त अपने चरित्रमें "नाहं वन्दे पदकमलयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतो" श्लोकका अर्थ प्रकाश करते हैं। प्रकृतिस्थ होकर भी वे सर्वदा कृष्णसेवोन्मुख होते हैं। वे बुभुक्षु अर्थात् कर्मफल भोगवादीकी तरह या मुमुक्षु अर्थात् अपस्वार्थपरायण मूढ़ निर्भेदब्रह्मलयवादीकी तरह श्रद्धाभिमानी नहीं होते। वैकुण्ठ-प्रतीतिमें अवस्थित होकर वे महाभागवतोंके प्रति कोई दोषारोप नहीं करते या अनर्थमय अवस्थामें अपनेको मुक्त नहीं समझते।

केवलाद्वैतवादीगण अपनेको सदा मुक्त अभिमान करते हैं। इसलिए वे आत्मवञ्चक हैं। वे अपने कुविचारोंमें निमग्न होकर प्रेमीभक्तोंके चरित्रमें नाना प्रकारके वितर्क उठाते हैं—प्रेमीभक्तोंके चरित्रकी निर्मलता और स्वाधीनतामें सर्वदा सन्दिग्ध रहनेके कारण विधि और युक्तिका अवलम्बन कर उनके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापन करनेके लिए व्यस्त होते हैं। वे भक्तोंको शास्त्रोंके और सम्प्रदाय प्रणालीके अधीन करानेकी चेष्टामें व्यस्त रहते हैं—स्वयं अज्ञानबद्ध होकर प्रेमीभक्तोंके ज्ञानमें मलिनता और निर्दयता ढूंढ़ने लगते हैं—पाप-पुण्यको साधन समझकर उससे मुक्त होनेकी वासना करते हैं—धर्माधर्मके विचारमें उद्विग्न होकर जड़देहमें आबद्ध रहकर त्रिगुणात्मक कर्मके भोक्ताके रूपसे नित्य मायाबन्धनमें ओतप्रोत भावसे अपनेको बँधा हुआ जानकर वैकुण्ठवाणीके श्रवणमें बधिरताका पोषण करते हैं।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर।

सिद्धान्तरत्न या वेदान्त पीठक

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ९, संख्या २, पृष्ठ ३१ से आगे)

इस "सिद्धान्तरत्न" ग्रन्थमें श्रीबलदेव विद्याभूषणजीने जिस प्रणालीके अनुसार सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वका विचार किया है, उसीको यहाँ बतलाया जा रहा है । समस्त तत्त्वालोचनाको आठ पादोंमें विभक्त किया गया है ।

प्रथम पादमें कहा गया है कि दुःखका परिहार एवं सुखकी प्राप्तिके लिये ही सब जीवोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । इन उभय प्रकारके साधनोंके लिये कपिल, पतञ्जलि, कणाद, गौतम और जैमिनीने जो सब उपाय बतलाये हैं, वे दोषपूर्ण हैं । श्रीवेदव्यासजीने उन सभी मतोंका खण्डन किया है एवं वेदशास्त्रोंका मंथनकर उनसे वेदान्त-सूत्रकी रचना की है । इस वेदान्तसूत्रमें उन्होंने यही शिक्षा दी है कि आत्मज्ञानको प्राप्तकर उसके द्वारा सर्वेश्वर भगवानकी उपलब्धि ही दुःख परिहार एवं सुख-प्राप्तिका एकमात्र साधन है । वे सर्वेश्वर भगवान ज्ञानानन्द-स्वरूप, सर्वशक्तिसम्पन्न, अचिन्त्य, अलौकिक, सत्यकाम आदि आठगुणोंसे युक्त और पुरुषाकार हैं । उनके स्वरूपमें धर्मधर्मिगत या स्वगत भेद नहीं है, फिर भी वे अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे सविशेष हैं । शास्त्रोंकी अभिधाशक्तिके द्वारा ही वे और उनका विचित्र "विशेष" जाना जाता है । दुःखकी निवृत्ति एवं सुखकी प्राप्ति इन दोनों कार्योंके लिये कर्मको साक्षात् कारण नहीं बतलाया है । बल्कि ज्ञान और भक्तिका साक्षात् निर्देश किया है । "त्वं" पदार्थका अनुभव ही निर्भेद ज्ञान है । उसमें कैवल्य-लक्षण मोक्ष निहित है । तत् (भगवान) और त्वम् (जीव) पदार्थोंका अपाङ्ग-वीक्षण अर्थात् उनके कटाक्षादि परमाद्भुत अप्राकृत सौन्दर्यका साक्षात्कार ही भक्तिस्वरूप ज्ञान है । शुद्ध "तत्" पदार्थके परिज्ञानरूप भक्तिसे सालोक्यादि मुक्तिकी प्राप्ति होती है शुद्ध सम्बन्ध विशेष परिज्ञानरूप भक्तिके द्वारा "तत्" पदार्थके श्रीचरणयुगलोंकी सेवा रूपी पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है । यह भक्ति ह्लादिनी-सार-समवेत सम्वित्-सार-स्वरूपा है, केवल जैवाणवादिरूपा नहीं है । यही भक्ति भगवान और जीव दोनोंका ही आनन्द विधान करती हैं । सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनी—ये तीनों भगवानकी पराशक्तिकी तीन वृत्तियाँ हैं । जीवके वर्तमान शरीरादिमें आविर्भूत होकर भक्ति विशुद्धानन्द तादात्म्य-स्वरूपसे सर्वेंद्रियोंमें कार्य करती है । कर्मके द्वारा चित्त-शुद्धिकी अपेक्षा न रखते हुए भी अधिकांश लोगोंने साधुसङ्गके द्वारा श्रद्धायुक्त भजनसे ही चित्त शुद्धि लाभ करते हुए भगवत्-साक्षात्कार किया है । सालोक्यादि मुक्ति गौण फल होनेके कारण उनके लिये प्रयास करना अकर्मण्यता ही है । "कृष्णका सुख ही मेरा सुख है" —इस तरह की निष्काम भक्तिका भक्ति ही एकमात्र फल है । यही भक्ति भगवत्-परिकरोंसे आरम्भकर आधुनिक भक्तोंतक सम्प्रदाय-प्रणालीसे गङ्गा-स्रोतकी

भाँति प्रवाहित हो रही है । पूर्णकाम भगवान भक्तोंकी पूजाको आदरके साथ ग्रहण करते हैं। कृष्ण-प्रसाद अचिन्त्य और अवितर्क है।

द्वितीय पादमें यह बतलाया है कि ऐश्वर्य और माधुर्यके भेदसे भगवत्ता दो प्रकार की है। इसी भेदके अनुसार जीवका ज्ञान और भक्ति दोनों दो-दो प्रकार के हैं। जहाँ पर परमैश्वर्य प्रकाशित हो अथवा अप्रकाशित हो और नरवत् लीलाका अतिक्रमण न हो, वहाँ पर माधुर्य है और जहाँ पर नरवत् लीलाका अतिक्रमण होता है तथा जहाँ परमैश्वर्य प्रकाशित होता है, वहाँ संभ्रमबुद्धि द्वारा स्वभाव-शैथिल्यकारी धर्मको ऐश्वर्यज्ञान कहा जा सकता है। निहित ऐश्वर्य-ज्ञान माधुर्यकी पुष्टि करता है। विस्मय, विरह और आपत्तिके समय माधुर्य भक्तको ऐश्वर्यकी अनुभूति होती है। ऐश्वर्य धर्म और माधुर्य धर्म-दोनों ही ब्रह्म-धर्म हैं। माधुर्य चित् शक्तिका सार एवं लीलानन्द स्वरूप है। यह भगवत् स्वरूपसे अभिन्न है । यही स्वरूप अठारह दोषोंसे शून्य भगवत्तनु है। मुग्धता, सर्वज्ञता, आदि अनन्त विरोधीगुण समूह भगवानके परमैश्वर्यके वशीभूत होकर अविरुद्ध रूपसे लीलाका विस्तार करते हैं। भक्ति दो प्रकारकी है—(१) ऐश्वर्य प्रकाशिनी विधि - भक्ति और माधुर्य - प्रकाशिनी रुचिभक्ति या प्रेम भक्ति। विधि भक्ति (१) मिश्र और (२) शुद्ध भेदसे दो प्रकारकी है। मिश्र विधि-भक्त स्वनिष्ठ, अर्चिरादि मार्गसे अन्तमें वैकुण्ठको गमन करते है। शुद्धभक्त व्याकुलताके कारण कृपालु भगवानकी प्रेरणासे गरुड़के द्वारा उनके धाममें पहुँचाए जाते हैं । रुचिभक्ति माधुर्यमयी होती है तथा बन्धुत्व भावसे युक्त है। ऐसे भक्त संभ्रम-शून्य भगवत्-धाममें गमन करते हैं । यशोदानन्दन कृष्ण गोपोंके बन्धु हैं। पुरुषोत्तम कृष्ण ही सर्वशक्तिसम्पन्न हैं और वे ही स्वयं-भगवान हैं। जिन सब स्वरूपोंमें सर्वशक्ति व्यक्त नहीं हुई है, केवल दो एक शक्तियाँ ही व्यक्त हुई हैं, वे विलास, अंश या कला हैं। कृष्ण सर्वावतारी हैं । परव्योमपति नारायण उनकी विलास-मूर्ति हैं। कृष्ण अनन्यापेक्षी (अन्यान्य रूपोंकी अपेक्षा न करनेवाले) स्वयंरूप हैं । (१) राधादि पूर्णशक्तियोंका परिकरमण्डल-सहचरत्व,(२) चराचरको विस्मित करनेवाली वेणुमाधुरी,(३) अपने को भी आकर्षित करनेवाली श्रीरूप-माधुरी, (४) निरतिशय कारुण्यादि-गुणव्याप्ति सर्वाद्भुत चमत्कार लीला - कल्लोल - समुद्र,—ये चार असाधारण गुण एकमात्र श्रीकृष्ण ही में पाये जाते हैं। नारायणादिमें भी ये प्रकाशित नहीं हैं । ह्लादिनीका सारांश प्रेमात्मिका श्रीमती राधारानी भगवानकी पराशक्ति हैं। लक्ष्मी दुर्गादि उनके अंश या छाया-विशेष हैं। इसलिये चौसठ गुणोंसे युक्त एवं समस्त धर्मोंके पूर्णाविष्कार-प्रयुक्त कृष्ण ही स्वयंरूप हैं। कृष्णकी नित्यलीलाका धाम 'गोलोक' के नामसे वेदमें प्रसिद्ध है। गोलोकके नीचे मथुरा, मथुराके नीचे द्वारका, उसके नीचे वैकुण्ठ, उसके नीचे शिवधाम एवं सबसे नीचे देवीधामरूप यह जड़जगत है । ये सभी धाम उन-उन लीलाओंको प्रकाश करनेके लिये जड़-जगतमें भगवत-इच्छासे आविर्भूत होते हैं।

आविर्भूत धाम सम्पूर्णरूपसे अप्राकृत होने पर भी असंस्कृत स्थूल दृष्टिमें वे प्रपञ्च जैसे प्रतीत होते हैं। वैसी दृष्टि भी पुण्यजनक ही है। अनन्ता-कार, अनन्तप्रकाश, अनन्तलीला, अनन्तब्रह्माण्ड,

अनन्त वैकुण्ठ, और अनन्त पार्षदोंके अनन्त व्यक्तिक्रमसे कृष्णकी सभी लीलाएँ नित्य हैं। भगवानकी कृपा बिना इस रहस्यको जाना नहीं जा सकता है। भगवत्धाममें भूत, भविष्यत्, और वर्तमानादि तीन काल नहीं होते। वहाँके स्थान, द्रव्य और सूर्य-चन्द्रादि सभी अप्राकृत हैं। प्रपञ्चका नाश होनेसे जड़जगतमें भगवानकी लीलाका प्रकाश नहीं होता, किन्तु उनके नित्यधाममें नित्यलीलाका कभी भी नाश नहीं होता। विधि और रागानुगा भक्ति दोनों ही दुःख-नाश और सुख-प्राप्तिके कारण हैं। कृष्णकृपाके बिना ऐसी भक्तिमें रुचि उत्पन्न नहीं होती। विधि भक्तिकी अपेक्षा रुचि भक्ति (रागानुगा भक्ति) श्रेष्ठ है।

तृतीय पादमें कहा गया है कि भगवान सम और अधिक रहित हैं। वे पराशक्तिविशिष्ट एवं षड्-विकारहीन हैं। वे देवताओंके भी उपास्य हैं। वे सभी देवताओंके भी देवता हैं एवं मुमुक्षुओंके उपास्य हैं। इसलिये केवल उन्हींकी उपासना करनी चाहिए। परन्तु दूसरे-दूसरे देवताओंकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। विष्णु भक्तिके विरोधी तीन प्रकारके हैं—(१) सब देवताओंको एक माननेवाले, (२) त्रिदेवोंको एक माननेवाले और (३) हरि और हरको एक माननेवाले। ये सभी शास्त्रोंके आंशिक वाक्योंको लेकर विष्णुकी अनन्यभक्तिमें बाधा उत्पन्न करते हैं। परन्तु इससे केवल दूसरोंकी और अपनी ही वञ्चना होती है। उन सभी शास्त्रवाक्योंको अन्यान्य शास्त्रवाक्योंके साथ एकसाथ विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीविष्णु ही परदेवता और जीवोंके उपास्य हैं। अन्यान्य देवता श्रीविष्णुके सेवकके रूपमें कार्य करते हैं। विष्णु ही सभी देवताओंके नियन्ता हैं अतएव त्रिमूर्तियोंमें विष्णु ही एकमात्र स्वेच्छामय पुरुष हैं और ब्रह्मा एवं महेश उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं न कि स्वांश। विष्णुके जन्म कर्मादि अप्राकृत हैं जो विष्णुके कृपासे जगतमें प्रकाशित होते हैं। अपने विभिन्नांशोंके साथ वे जो लीलाएँ करते हैं, वे भी नित्य हैं।

चतुर्थपादमें कैवल्यात्मकवादियोंको निरस्त किया गया है। कैवल्यात्मकवादियोंके मतानुसार सभी श्रुतियाँ दो भागोंमें विभक्त हैं—सगुण और निर्गुण। निर्गुण श्रुतियाँ ही ब्रह्मका प्रतिपादन करती हैं। सगुण श्रुतियाँ ब्रह्मके व्यवहारिक भावको व्यक्तकर निर्गुण श्रुतिसिद्ध शुद्ध चिन्मात्र आत्माको प्रतिष्ठित करनेके लिये अनुवादके रूपमें वर्तमान हैं। इस तरहसे श्रुतियोंको विभाग करना नितान्त अन्याय कार्य है। ऋषियोंने श्रुतियोंका जो कर्म-काण्डीय और ज्ञानकाण्डीय विभाग किया है, वह अनिन्दनीय है। क्योंकि वस्तुतः ज्ञानकाण्डीय श्रुतियाँ ब्रह्मका साक्षात् निर्देश करती हैं और कर्मकाण्डीय श्रुतियाँ ज्ञानाङ्गरूपसे परम्पराक्रमसे ब्रह्मका ही निर्देश करती हैं। इस स्थलपर ज्ञानकाण्डीय श्रुतियों-को पारमार्थिक और व्यवहारिक भेदसे विभाग करना अनुचित है। वेदवाक्योंमें ऐसे विभागका कोई इङ्गित नहीं है। प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अज्ञेय सभी सगुण श्रुतियाँ ब्रह्मके अलौकिक पारमार्थिक गुणोंकी प्रतिष्ठा करती हैं और निर्गुण श्रुतियाँ केवल प्राकृत गुणोंका निषेध करती हैं। उपनिषद् पुरुष शब्द वाच्य है। भोग त्यागके लक्षणके द्वारा कल्पित ब्रह्मका अचैतन्यत्व ही सिद्ध होता है।

"साक्षी", 'केवल', 'निर्विशेष',—ये सभी निर्गुण साधक वाक्य क्या गुण साधक नहीं हैं ? सर्वज्ञादि-की तरह साक्षीत्यादि वाक्य भी पारमार्थिक हैं । निर्गुण-चिन्मात्र-चिन्ता सर्वदा अलीक है । वेद-वाक्योंमें शिथिल विश्वासके कारण मायावादकी उत्पत्ति हुई है । शुद्धसत्त्वमें स्वरूपानुरहित अप्राकृत नामरूपादि हैं, यही ज्ञानकाण्डीय वेदवाक्योंका साक्षात् अर्थ है । सभीमें वाच्य न होने पर भी भगवान ही वेदवाच्य हैं, और वे जीव एवं जगत्से पृथक हैं । क्षर-अक्षरसे अतीत पुरुषोत्तम स्वरूप भगवानको जानकर जीव कृतार्थ होते हैं ।

पञ्चम पादमें कहा है कि "अद्वैत" कभी भी सिद्ध नहीं होता । अद्वैतको ब्रह्मातिरिक्त कहनेसे 'अद्वैत' नहीं रहता । ब्रह्मात्मक कहनेसे सिद्ध—साधनता दोष आता है । यह नितान्त निष्फल है । आत्मा-स्वरूपसिद्ध वस्तुका जब आवरण ही सम्भव नहीं हैं, तब अद्वैतको अज्ञान कैसे आच्छादित कर सकता है ? अनधिगत अर्थ करनेसे शास्त्र अप्रमाणित हो पड़ते हैं । यदि अज्ञान नहीं है, तब सिद्ध-आत्मा, का मोक्ष भी सम्भव नहीं है । अज्ञान सत् भी नहीं है, असत् भी नहीं है । तब अनिर्वचनीय क्या है ? इस तरह कल्पनाका कोई अन्त ही नहीं है । एक झूठे मतका पोषण करनेके लिये कल्पना ही कल्पना करनी पड़ती है । अतः अद्वैत विचार आकाश कुसुम' की भाँति सर्वदा मिथ्या है । अद्वैतमतका विचार करनेसे विषय, प्रयोजन एवं अधिकारीका अभाव हो पड़ता है । उस मतका शास्त्रके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । सत्वस्तुके साथ ही शास्त्रका सम्बन्ध है ।

(क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीहरिनाम संकीर्त्तन

श्रीकृष्णकी सेवा छोड़कर जीव संसार सागरमें गोते लगा रहे हैं । वे नाना प्रकारके दुःख-कष्टोंसे जर्जरित हैं । बद्धजीवोंके लिए भगवत्कृपा अथवा वैष्णव कृपाके अतिरिक्त सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा पानेका अन्य कोई उपाय नहीं है । बद्धजीव स्वभाव से ही दुर्बल और पराधीन है । जीव कर्म करनेमें ही स्वतंत्र है; किन्तु कर्मफल भोगनेमें पराधीन होता है । भगवानकी जड़ा प्रकृति जीवोंके कर्मफलके अनुरूप विभिन्न प्रकारके दुःखों अथवा सामयिक जड़ीय सुखोंकी अनुभूति कराती है । ये सुख नित्य न होकर अनित्य ही होते हैं, जो जड़ीय गठबन्धनके हेतु हैं । इस प्रकारका मायिक-बन्धन एकमात्र भगवत्कृपासे क्षणमात्रमें सर्वथा खुल सकता है । भगवान ही जीव की गति हैं, वे ही नियन्ता हैं, पोषक हैं और सभी प्रकारके दुःखोंका विनाशकर नित्य सुख प्रदान करने वाले हैं । अणु चैतन्य जीव, विभुचैतन्य भगवानके अधीन है और वह उनका नित्य सेवक है। जब वह क्षुद्र-ज्ञानवशतः अपने स्व-स्वरूपका बोध खो देता है तथा

मायिक भोगोंमें आसक्त होकर, उनमें सुखकी कल्पना कर बैठता है—तब माया उसपर सूक्ष्म और स्थूल शरीरका आवरण डालकर, उसे संसारमें नाना प्रकार के स्व-कल्पित जड़ीय सुखोंका भोग करनेके लिए डाल देती है।

भगवान ही जीवके आश्रय हैं। उनका आश्रय ग्रहण किये बिना, दुस्तर मायाके बन्धनसे मुक्ति मिलना कठिन ही नहीं, असम्भव है। इसीलिये भगवान श्रीकृष्णने स्वयं अर्जुनको गीतामें उपदेश किया है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७।१४)

भगवन्नाम साक्षात् भगवान ही हैं। कलिकालमें श्रीहरि 'नाम' रूपमें ही अवतार किये रहते हैं। हरिनाम आनन्दके अवतार हैं, परब्रह्म और जगदीश्वर हैं। इसलिये भगवन्नामका आश्रय ही वस्तुतः भगवताश्रय है। हरिनाम द्वारा ही सांसारिक मायाविष्ट जीवोंका उद्धार हो सकता है। हरिनाम का स्मरण, चिन्तन, मनन और कीर्त्तन ही कलियुगका परम साधन और धर्म है। इस विषयमें वेद उपनिषद् और पुराण एवं श्रीमद्भागवत आदि आकर ग्रन्थोंमें ऐसी घोषणाकी गयी है कि कलिकालमें हरिनाम संकीर्त्तनके अतिरिक्त नित्य मंगल प्राप्तिका अन्य कोई उपाय नहीं है। हरिनाम ही साधन और साध्य हैं। कलियुग-पावनावतारी श्रीमन्महाप्रभुजीने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है—

हर्षे प्रभु कहेन सुन स्वरूप-रामराय।
नाम संकीर्त्तन कलौ परम उपाय॥
संकीर्त्तन यज्ञे कलौ कृष्ण-आराधन।
सेई त सुमेधा पाय कृष्णेर चरण॥
नाम संकीर्त्तने हय सर्व्व अनर्थ-नाश।
सर्व शुभोदये कृष्णे प्रेमेर उल्लास॥
संकीर्त्तन हैते पाप संसार नाशन।
चित्त शुद्धि सर्व्वभक्तिसाधन उद्गम॥
कृष्ण प्रेमोद्गम प्रेमामृत-आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति सेवामृतसमुद्रे मज्जन॥
अनेक लोकेर बांछा अनेक-प्रकार।
कृपाते करिल अनेक नामेर प्रचार॥
खाइते शुइते यथा तथा नाम लय।
काल देश नियम नाहि सर्व सिद्धि हय॥
सर्व शक्ति नामे दिला करिया विभाग।
"आमार दुर्दैव, नामे नाहि अनुराग"॥
(चै० च० अन्त्य २० परिच्छेद)

कलिकालमें श्रीहरिनाम संकीर्त्तनके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं है। कृष्णमंत्रसे संसार-बंधनसे छुटकारा होता है तथा कृष्णनामसे कृष्णकी प्रेमाभक्ति की प्राप्ति होती है। जो स्वयं अपने जीवनमें शुद्ध भावसे (नामापराध से दूर रहकर) कृष्णनामका स्मरण, चिन्तन और कीर्त्तन करते हैं; साथ ही अन्य लोगों द्वारा भी वैसा ही करानेका प्रयास करते हैं—वे ही वास्तवमें संसारमें धन्य हैं और उनका ही मनुष्य जन्म धारण करना सार्थक है। वे ही वस्तुतः धार्मिक, दयालु, दाता और शुद्ध धर्म प्रचारक एवं आचार्य कहलानेके पात्र अथवा अधिकारी हैं।

कृष्ण मंत्र हैते हवे संसार मोचन।
कृष्ण नाम हैते पावे कृष्णेर चरण॥

नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म्म ।
सर्व्व मंत्र सार नाम एइ शास्त्रमर्म्म ॥
कृष्ण नाम महामंत्रे र एई त स्वभाव ।
जेई जपे तार कृष्णे उपजये भाव ॥
(चै० च० आदि ७।७३-७४, ८३)

श्रीमद्रूपगोस्वामीजी स्व-रचित भक्तिरसामृत-सिन्धु नामक ग्रन्थ में कहते हैं—

कुर्व्वन् कारयते धर्म्मं यः स धार्मिकः उच्यते ।
(भ० र० सि २-१-१२६)

कलियुग पावनावतारी श्रीगौरांगदेव ही हरिनाम संकीर्त्तनके प्रवर्त्तक हैं । उन्होंने कृष्णनाम कीर्त्तन श्रवण और स्मरणको ही कलियुगमें जीवका परम धर्म और उपादेय साधन बतलाया है । जो लोग संसार-बंधनसे मुक्ति पाकर परमानन्द और शुद्ध कृष्ण प्रेमधन प्राप्त करनेके इच्छुक हैं, उन्हें श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवके उपदेशका अनुसरणकर नामका आश्रय ग्रहण करना चाहिए तथा अपने जीवनका प्रत्येक क्षण कृष्णके चरण-कमलोंमें समर्पण कर, नाम संकीर्त्तनमें तत्पर होना चाहिए ।

श्रीहरिनाम, श्रीहरिसे अभिन्नतत्त्व हैं—वे सब कुछ प्रदान करनेमें समर्थ हैं । फिर भी जगत कल्याणकी दृष्टिसे नामीसे नाममें अधिक शक्तिका परिचय मिलता है । स्वयंरूप कृष्णकी दया विशेष अवस्थामें ही होती है; परन्तु कृष्णनाम सबके लिये, सर्वत्र ही सभी कालोंमें सुलभ हैं ।

"कृष्ण हैते कृष्ण नामे धरे महा शक्ति"

श्रीकृष्ण नाम संकीर्त्तन करनेके लिये तृणसे भी अधिक दीन-हीन, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु, स्वयं अमानी और दूसरोंको मान देनेवाला होना चाहिए । इन चार गुणोंके अभावमें शुद्ध हरिनामका उच्चारण नहीं होता । वास्तवमें तो हरिनाम जड़ इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जाते । बल्कि जीवको सेवनोन्मुख, दीन-हीन, सहिष्णु, मानद और अमानी देखकर, वे स्वयं उनकी जिह्वा पर आविर्भूत होकर नृत्य करते हैं ।

नामकीर्त्तनकारी भक्त अपनेको श्रीहरिनामका सेवक समझे तथा श्रीहरिनामको अपना प्रभु । सभी प्रकारकी भोग प्रवृत्तियोंका शमनकर, संसारके प्राणी-मात्रको श्रीहरिका सेवक एवं समस्त जगतीतलकी वस्तुओंको उनका भोग्य समझना चाहिये । हृदयमें लेशमात्र भी भोग भावना अथवा भोगासक्तिका प्रवेश नहीं होना चाहिये ।

श्रीकृष्ण नाममें सभी प्रकारकी शक्तियोंका समावेश है । श्रीकृष्णनामके आभास मात्रसे ही सभी प्रकारके पापक्षय हो जाते हैं तथा संसार बंधन भी शिथिल हो जाता है । इस प्रकार जीव शुद्ध नाम ग्रहण करनेका अधिकारी बन जाता है । जिससे उसकी भक्ति उत्तरोत्तर विकाशोन्मुख रहती है तथा कृष्णका सामीप्य लाभ होता जाता है ।

श्रीकृष्ण नाम अखिल रसामृत सिन्धु हैं । वे सभी प्रकारके रस सुखको प्रदान करने वाले हैं । पाप राशिका समूल विनाशकर, नाम—भक्तकी रसनापर उदित हो, नृत्य करने लगते हैं तथा उस अनिर्वचनीय रसका आस्वादन कराते हैं, जिसको कोटि-कोटि जन्म तक मानव शरीर धारणकर, तपस्या रत रहने पर भी प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है ।

नाम सभी प्रकारकी बाधाओंका मूलोच्छेदन करने वाले हैं। हृदय कितना ही कुसंस्कारोंसे आवृत क्यों न हो, किन्तु निरपराध होकर कृष्णनामका उच्चारण करने मात्रसे सभी कुसंस्कार भस्मीभूत हो जाते हैं तथा शुद्ध कृष्ण भक्तिका उदय हो जाता है। इतना अवश्य है, पूर्व-पूर्व जन्मोंकी पाप राशिका अधिक संचय होनेके फलस्वरूप प्रारम्भमें शुद्ध उच्चारण न हो; किन्तु बारम्बार अभ्याभ करने पर शुद्ध नाम शीघ्र ही उदय होने लगते हैं।

कृष्णनाम सभी मंगलोंकी खान हैं। वे अमंगलों के नाशक, नित्य सुख प्रदान करने वाले, अखण्ड, पूर्णानन्द स्वरूप तथा पूर्ण ज्ञानमय हैं। तभी तो मदीय आराध्यदेव श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेवजीने कृष्ण नामको ही अपना तदीय प्रेम प्राप्त करनेका एकमात्र साधन माना है।

नाम संकीर्त्तन ही साधन-शिरोमणि है। सभी प्रकारके भक्त्यंगोंमें कृष्णनाम ही सर्व श्रेष्ठ भक्ति साधन हैं। कृष्णनाम केवल साधन मात्र ही नहीं हैं बल्कि साध्य भी वे ही हैं। अतः सत्संगमें निरन्तर कृष्ण नामका कीर्त्तन ही जीवके लिये परम कल्याण जनक है। पूर्वानुरूप ही वेद, उपनिषदोंमें साधन अङ्गोंका विवेचन हुआ है। सभी युगोंमें जीव समान गुण सम्पन्न नहीं होते। इसीलिये ऋषि-मुनियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थरत्नोंमें समयानुकूल साधनोंका निर्देश है। सत्युग अथवा कृतयुगमें विष्णुका ध्यान करनेसे ही पराशान्ति तथा सुख प्राप्त हो जाता था। त्रेता-युगमें यज्ञानुष्ठानों एवं द्वापरमें अर्चा-विग्रह-पूजा द्वारा ही प्रभुकी प्राप्ति हो जाती थी; किन्तु कलियुगमें शुद्ध रूपमें ध्यान, तप, योग, यज्ञ, याग एवं अर्चा-पूजा होना कठिन है। जीवोंकी प्रवृत्ति भी अत्यन्त ही आलस्य और तन्द्रा युक्त है, साथ ही वर्त्तमान युगमें आयु भी अत्यल्प है। जिसमें उपर्युक्त साधनोंका सम्पन्न होना कठिन है। इसीलिये कलियुगमें सबसे सरल तथा सर्वोपयोगी साधन नाम कीर्त्तन ही है। नामके साधनमें जाति, कुल, ऊँच-नीच, देश काल इत्यादिका अवरोध नहीं है। हरिनामका कीर्त्तन शुचि और अशुचि सभी अवस्थाओंमें किया जा सकता है; किन्तु निरपराध रहनेकी नितान्त आवश्यकता है। अपराधसे युक्त होकर नाम करनेसे नामका शुद्ध फल नहीं पाया जाता। अतएव इस सरल और सर्व सुखराशि साधनको ठीक रूपमें सम्पन्न करनेकी आवश्यकता है। दूसरे-दूसरे साधन नाम-साधनके समान नहीं हैं। कोटि-कोटि यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी जो फल प्राप्त नहीं होता—केवल नामाभासके द्वारा ही उससे शतगुण अधिक फल, क्षणमात्रमें प्राप्त हो सकता है।

परम करुणामय श्रीहरिने कलियुगके जीवोंपर दया परवश होकर ही श्रीनाम संकीर्त्तनका प्रकाश किया है। जो लोग द्रव्य, जाति गुण एवं क्रिया-विषयमें दीन अर्थात् अयोग्य अथवा असमर्थ हैं, उन लोगोंके निमित्त ही—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इस षोडश नाम एवं बत्तीस अक्षरों वाले महामंत्र का प्रकाश किया है। इस महामंत्रका एकनिष्ठ होकर स्मरण, चिन्तन और कीर्त्तन करनेसे जीवोंकी सर्व सिद्धि होती है।

—"सत्यपाल ब्रह्मचारी"

भगवानकी कथा

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ६, संख्या २ पृष्ठ ३९ से आगे]

जो लोग ऐसा समझते हैं कि केवल भारतमें ही ब्राह्मण-क्षत्रियादि चार वर्ण हैं, वे भ्रान्त हैं। कलिके प्रभावसे लोग प्रायः शूद्र और शूद्राधम हो जायेंगे—ऐसा शास्त्रमें कहा गया है। तथापि भारत-वर्षमें जैसे ब्राह्मण आदि गुणगत उच्चवर्णके मनुष्य थोड़े-बहुत देखे जाते हैं, वैसे ही सभी देशोंमें हैं—इसमें सन्देह ही क्या है? सभी देशोंमें गुण कर्मके विचारसे इन चार वर्णोंका किसी न किसी रूपमें अस्तित्व अवश्य ही है। गुण कर्मकी दृष्टिसे एक शूद्राधम चाण्डालका भी भगवत् भक्तिमें अधिकार है। भगवद्भक्ति-परायण चण्डाल वंशजात व्यक्ति भी अपने गुणोंके प्रभावसे सभीका पूज्य हो जाता है। इसके लिए शास्त्रोंमें कई प्रमाण हैं। जैसे "न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः" आदि आदि। भगवद्भक्ति-परायण ब्राह्मण जिस गतिको पाते हैं, भगवद्भक्ति परायण चाण्डाल भी उसी गतिको प्राप्त करते हैं—"चण्डालोऽपि द्विज श्रेष्ठः हरिभक्ति-परायणः"। चण्डाल वंशजात हरि-भक्ति-परायण व्यक्ति भगवद्भक्ति रहित साधारण ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। वे ब्राह्मणोंके गुरु हो सकते हैं, पूर्व-पूर्व आचार्योंने इस विषयमें अनेक प्रमाण दिखलाये हैं। गुण और कर्मोंके विभाग से ब्राह्मणादि वर्ण-विभाग है। किन्तु जो हरिभक्ति-परायण हैं, वे निर्गुण हैं अर्थात् जड़ गुणोंसे अतीत हैं। गुणा-तीत व्यक्तिको ब्राह्मण समझकर पूजा करना भी यथेष्ट नहीं है, बल्कि वे और भी अधिक पूजनीय हैं। अतएव भगवानके श्रीपादपद्मका आश्रय करने से ही सभी देश और व्यक्ति सभी देशोंमें एवं सभी समयोंमें सब प्रकारके मंगलके अधिकारी बन सकते हैं। श्रीमद्भगवत् गीतासे हमें यही शिक्षा प्रचुर-रूपमें प्राप्त होती है।

अतएव विश्व ब्रह्माण्डमें जो जहाँ पर अवस्थित हैं, वे यदि गीतामें भगवानके द्वारा कहे हुए कर्म-योगका अनुष्ठान करें, तो उनके समस्त कर्म ब्रह्म-समाधित्व या चिन्मयत्वको प्राप्त होते हैं। ऐसे कर्म-योगी ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं। गीतामें (४।२४)

> ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
> ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

विष्णु प्रीतिके लिये यज्ञरूपी कर्म करनेसे ब्रह्म ज्ञान कैसे लाभ होता है। यही इस श्लोकमें बतलाता गया है। शंकराचार्यने मायावादकी कल्पनाकर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—वाक्यके द्वारा जगतमें निर्विशेष ब्रह्मकी अवतारणा कर जो विचार-विपर्यय किया है, उसीका इस श्लोकमें सम्यक् रूपसे अन्वय किया है। यज्ञके लिये कर्म किस तरहसे हो सकता है, यह विचारणीय है। जनकादि महाजनोंने यज्ञके लिये जिस प्रकारका कार्य किया था, उसे जानना आवश्यक है, सब यज्ञोंका मूल उद्देश्य विष्णु-प्रीति या कृष्ण सेवा है। हमारी वृद्धावस्थामें जीवन-निर्वाह आदि सभी

कार्योंमें अथवा सभी वस्तुओंमें जड़ सम्बन्ध अवश्यंभावी है। किन्तु यदि वे सब कार्य ब्रह्मभाव "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" भावसे युक्त हैं अथवा सभी कार्य ब्रह्मके लिए या ब्रह्म-सम्बन्धीय हैं—ऐसी चिदालोचनासे युक्त हो एवं उपयुक्त आचारवान व्यक्तिके द्वारा वे सभी कार्य सम्यक् रूपसे संशोधित होकर किये जायँ, तब वे ही 'यज्ञ' कहलाते हैं। इस प्रकार का ब्रह्मभाव, चिद्भाव या भगवद्भावका उदय होने से जड़का जड़त्व नष्ट हो जाता है और तभी "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस विचारकी सार्थकता होती है। सेवानुकूल सभी विषय 'माधव' हैं—वैष्णवगण ऐसा ही विचार करते हैं। लोहा जैसे अग्निके संयोगसे अग्निमय हो जाता है एवं उस समय लोहेका लौहत्व स्तब्ध होकर आगका कार्य करता है, उसी प्रकार विष्णु सम्बन्धयुक्त या कृष्ण सम्बन्धयुक्त या यज्ञ के लिए जो कुछ किया जाता है, वह सभी कुछ ब्रह्मत्व या चित्तत्व है। गीता (१४।२७) में कहते हैं:—

"ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

इन सभी श्लोकोंमें ब्रह्मको भगवान श्रीकृष्णकी अङ्ग-ज्योति स्वरूप बतलाया है। ब्रह्मत्व उन्हींमें प्रतिष्ठित है। इसीलिए जहाँ पर कृष्णसेवा होती है, वहीं "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—इस विचारकी उत्कर्षता है। अर्पण, हविः अग्नि, होता एवं फल—ये पाँचों याज्ञिक तत्त्व जब कृष्ण-सम्बन्धसे ब्रह्माधिष्ठानको प्राप्त होते हैं तभी उस कार्यको वास्तविक यज्ञ कह सकते हैं। यज्ञ ही विष्णुकी प्रीति है। यह विष्णु-प्रीति ही श्रेष्ठ यज्ञ हैं और वही यथार्थ ब्रह्म-समाधि है।

उसी प्रकार जो सभी कार्योंको निर्बन्ध कृष्ण सम्बन्धमें करते हैं, वे ब्रह्म समाधि लाभ कर अर्थात् "चित्त-दर्पण-मार्जन" एवं भव-महा दावाग्नि-निर्वापण कर विशुद्धात्मा बन जाते हैं। वे, अविशुद्ध-बुद्धि' या 'विमुक्त-मानी' मायावादियोंसे अति उच्च अवस्थामें हैं। उनके अधः पतनकी कोई सम्भावना नहीं है। वे विजितात्मा एवं जितेन्द्रिय गोस्वामी हैं। वे ही पृथ्वीका शासन कर सकते हैं और वे ही जगतका वास्तविक कल्याण कर सकते हैं। मायाबद्ध जीव जगतका कोई उपकार नहीं कर सकते। कर्मयोगारूढ़ व्यक्ति सर्वदा ही मुक्त अवस्थामें अवस्थित हैं। गीता (५।७) में कहा है—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

विशुद्धात्मा कर्मयोगीके विरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति अर्थात् जो भगवानके साथ योगयुक्त नहीं हैं एवं इसलिए जिन्होंने चित्तकी विशुद्धता नहीं पायी है, ऐसे अजितेन्द्रिय व्यक्ति अपनी इन्द्रिय-तृप्ति कर, यथेच्छाचार कर ऐसा कहनेकी धृष्टता करते हैं कि सब कुछ भगवान ही करा रहे हैं। इस प्रकारके मायाबद्ध दुष्ट और नास्तिक जैनगण सभी छलनाओंको भगवानका कार्य कहकर अपने स्वेच्छाचारका समर्थन करते हैं। वे "सब कुछ भगवानका ही कार्य है" ऐसा कहकर अपने दुष्कृत्योंका समर्थन कर जगतका बहुत ही अहित करते हैं। जो

विशुद्धात्मा हैं, उनके मन, प्राण आदि सभी कृष्ण-पाद-पद्ममें ही नियुक्त रहते हैं। "स वै मनः कृष्ण-पादारविन्दयोः" आदि विचारके अनुसार वे ऐसे प्राकृत अपसम्प्रदायियोंसे दूर रहते हैं। विशुद्धात्म-व्यक्ति जानते हैं कि जीव अणुचैतन्य होनेके कारण उनका अणु-स्वातन्त्र्य सर्वदा ही वर्त्तमान होता है। भगवान स्वराट्—पूर्ण स्वतन्त्र एवं पूर्ण स्वेच्छाचारी होने पर भी जीवके स्वभावगत 'अणु-स्वातन्त्र्यको नष्ट करना नहीं चाहते। जीव स्वयं उस भगवत् प्रदत्त अणु स्वातन्त्र्यका अपव्यवहार कर अविद्या-रूप मायाका आश्रय करते हैं एवं मायाके संसर्गसे ही जीवोंमें सत्त्व, रजः, तमः आदि प्राकृत स्वभाव और जड़गुण उत्पन्न होते हैं। जब तक उन सब प्राकृत गुणोंसे वे अतीत नहीं होते, तब तक प्रकृतिके गुणोंसे आच्छादित होकर उनसे विकृत स्वभावको लाभ करते हैं और इस नये स्वभावसे प्रेरित होकर कार्य करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो जगतके सभी कार्योंमें ही जड़ वैचित्र्य नहीं रहता। इन सभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकृतिगत विचारोंको न जानकर "परमेश्वरके द्वारा सभी कार्य किये जा रहे हैं" या "मनुष्योंका कर्त्तृत्व और कर्म-योजना परमेश्वरके द्वारा होती है"—इन विचारोंको ग्रहण करनेसे परमेश्वरमें वैषम्य दोष आ पड़ता है। परमेश्वरकी इच्छासे एक मनुष्य कोई कार्य कर दुःख पाता है और कोई मनुष्य उसी कार्यको करके सुख पाता है—ऐसा वैषम्य भगवानमें कदापि सम्भव नहीं है। परन्तु वे सभीको जड़-वैषम्ययुक्त समस्त कर्मोंका त्याग करने-का ही उपदेश देते हैं। भगवत् विस्मृतिके कारण जीवकी अनादि बहिर्मुखता है। इसलिए वह अविद्याका स्वभावजात कर्म करता है। भगवत् गीता (५।१४) में कहते हैं—

> न कर्त्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
> न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥

अतएव यज्ञके लिये जो कर्म किये जाते हैं, उन कर्मोंको छोड़कर दूसरे सारे कर्म ही जीवके स्व-स्वभावज, स्व-कपोल-कल्पित स्वेच्छाचार हैं। ऐसे स्वेच्छाचारमें भगवानका कर्त्तृत्व या कर्मफल-संयोग थोड़ा भी नहीं है। ये सभी कर्म प्रकृतिके गुणजात हैं। इसलिए ये प्राकृत कर्म हैं। भगवान उन कर्मोंके निरपेक्ष द्रष्टा मात्र हैं।

कर्मयोगीके सभी कर्म ब्रह्मसमाधियुक्त होनेके कारण कर्मयोगी सर्वदा ही गुणातीत अवस्थामें प्रतिष्ठित होता है। गुणातीत अवस्थामें सांसारिक सम्बन्ध नहीं रहता, परन्तु भगवत् सम्बन्धसे भगवत् दर्शन ही होता है। उस भगवत् दर्शनमें सत्त्व, रजः, तमः आदि त्रिगुण कोई बाधा नहीं दे सकते। कर्म-योगीका कृष्ण सम्बन्धयुक्त दर्शन ही गुणातीत साम्य-दर्शन है। गीता (५।१८) में—

> विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
> शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

विद्या विनययुक्त ब्राह्मण सत्त्वगुण प्रधान है। पशुओंमें गाय सत्त्व गुण प्रधान हैं। हाथी, सिंह आदि रजोगुण प्रधान हैं। कुत्ते आदि एवं मनुष्योंमें चाण्डाल तमोगुण युक्त हैं। जो कर्मयोगी हैं, वे भग-वद्भावमें विभावित होनेके कारण वे गुणगत विचार-से स्थूल शरीरका दर्शन नहीं करते, बल्कि शुद्ध

आत्म-शरीरका ही दर्शन करते हैं—यही कृष्ण सम्बन्धमें समदर्शन है। वे संसारकी सभी वस्तुओं-को ही भगवत् सेवाके उपकरणके रूपमें दर्शन करते हैं और जीवमात्रको ही नित्य कृष्णदास जानते हैं। उसी कृष्णदासत्वका जड़ शरीरमें आरोप न कर समस्त वस्तुओंको एवं सभी जीवोंको एकमात्र यज्ञमें या विष्णु प्रीतिके कार्यमें नियुक्त करना ही—सम-दर्शनका उज्ज्वल दृष्टान्त है।

कर्मयोगी जानते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण ही सभी वस्तुओंके एकमात्र भोक्ता हैं और वे ही जीव-मात्रके एकमात्र प्रभु हैं। इसी कृष्ण सम्बन्धको भूलकर जीव मायाके प्रभावसे अपनेको—भोक्ता या त्यागी समझ बैठते हैं; यह उनका भ्रम ही है। यही भवरोग है। सब प्रकारके शुभकर्म, ज्ञान, योग, तपस्या, वैराग्य आदि संसारमें जो कुछ भी किया जाता है, यदि वे सब भगवानकी कथामें रति अथवा प्रीति उत्पन्न नहीं करते, तो वे केवल श्रममात्र ही हैं। भगवत् गीतामें भगवान श्रीकृष्णने इसीलिए कहा है—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(गीता ५।२९)

यज्ञके लिये कर्म करनेका उपदेश पहले ही दिया जा चुका है। यह स्पष्ट है कि यज्ञ तपस्या आदिके भोक्ता केवल एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं। कर्मियों द्वारा किया गया यज्ञ एवं ज्ञानियों द्वारा की गयी तपस्या आदिके 'भोक्ता' या पालयिता भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। योगियोंके उपास्य अन्तर्यामी परमात्मा भी श्रीकृष्णके अंश या कला ही हैं। इन सब विषयोंकी विस्तारपूर्वक आगे आलोचना की जायगी। श्रीकृष्ण ही कर्मी, ज्ञानी, योगी और भक्त एवं सर्व श्रेणियोंके एकमात्र सुहृद हैं। वे सबके सुहृद होनेके कारण अपने प्रियतम भक्तके द्वारा भगवद्भक्तिको देश-काल-पात्रादिके उपयोगी बनाकर युग-युगमें धर्मकी स्थापना करते हैं। वे ही सर्वलोकमहेश्वर आदिपुरुष सब कारणोंके कारण श्रीगोविन्द हैं। उन्हीं श्रीगोविन्दको विशुद्ध कर्मयोगके द्वारा क्रमपथसे जाना जाय, तभी परम शान्ति पायी जा सकेगी। (क्रमशः)

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज।

श्रीकृष्ण-आविर्भाव

आज भाई नन्द भवन आनन्द ।
त्रिभुवनपति अवतार लियो जहँ, गावत वेद फणिन्द ॥१॥
भादों अर्ध रात्रि आठन बुध, लगन घटी शुभकन्द ।
रोहिण हर्षिन योग सुखद गृह, प्रकटे गोकुलचन्द ॥२॥
गावत युवति सोहिलो लै लै नाम यशोमति नन्द ।
ग्वाल परसपर हृदय मेलि दधि, छिरकत गावत छन्द ॥३॥
बसन विभूषण पाय असीषत हरषे याचक वृन्द ।
"गौरी" को प्रभु देउ निछावर चरन भक्ति गोविन्द ॥४॥

—गौरीशंकर व्रजवासी

श्रीमद्भागवतमें सख्यभाव

(वर्ष ९, संख्या १, पृष्ठ १५ से आगे)

सख्यभावकी अधिकता, प्रेमकी प्रगाढ़ता, अति-निकट्य तथा साहचर्यके कारण श्यामसुन्दर मदन-मोहनको प्रसन्न - चित्त, निरोग, मन्द - मुसकानकी सुधामाधुरीसे व्रजजनको अभिषिञ्चित करते हुए कलिन्दनन्दिनीसे निकलते देख, सभीके शरीरमें फिर से प्राणोंका सञ्चार हो रहा हो—ऐसा आभास होने लगा; कृष्णप्राप्तिके आनन्दमें भरा गोपसमूह उस समय सब कुछ भूल गया। उसे क्या करना है, यह भी ध्यान नहीं रहा। उसने देहसे, आत्मासे विस्मृति सी ले ली; व्रजमें जानेकी भी विचार-सरणि विलुप्त हो गई।

इसीसे उस रातको व्रजवासियोंने अपनी गायोंके साथ भूख, प्यास एवं श्रमसे श्रमित होकर भी यमुना-पुलिन पर ही बिताया। दिन भरके थके रहने पर भी विविध प्रकारकी श्रीकृष्णलीलाओंका गान करते हुए वे विश्रान्तिको भी अन्तराय समझने लगे, निद्राको घातक मानने लगे। उन्हें निन्द्राकालीन वियोग भी अखरने लगा। केवल इतस्ततः लम्बाय-मान होकर या एक दूसरेसे टिककर ही श्रीकृष्ण दर्शन तथा कथा श्रवणका आनन्द लेने लगे। परन्तु दैवगतिसे यह आनन्द अधिक कालतक नहीं रहा। सबके सुखों में बाधा पहुँचानेवाली नई विपत्तिने जन्म लिया। ठीक आधीरातके समय ग्रीष्म ऋतुके तापसे सन्तप्त "दावानल" यमुनाके निकटस्थ वनमें पूरे वेगसे बढ़-कर वृक्ष, जीव-जन्तुओंको जलाता हुआ व्रजवासियों-को घेर उनपर आक्रमण करने लगा। उस समय सारे व्रजवासी सरल स्वभावके कारण घबरा उठे। उन्हें दूसरा कोई उपाय सूझ नहीं पड़ा। उन्हें तो ऐसी विपत्तिमें एक मात्र व्रजनाथ ही आश्रय और रक्षकके रूपमें दिखाई दिये। वे सभी आगकी लपटों से झुलसते हुए श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर पुकार पुकार कर कहने लगे।

> कृष्ण-कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम।
> एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः॥
> सुदुस्तराद्यः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो।
> न शक्नुमस्तवच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम्॥
>
> (भा. १०।१७।२३-२४)

हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाराज। हे अमित पराक्रम राम! यह महाभयंकर अग्नि आपके हम सबोंको भस्म किये डालता है। हे प्रभु, इस महादुस्तर कालरूप अग्निसे हम मित्रोंकी रक्षा कीजिये। आपके निर्भय पदको हम नहीं छोड़ सकते। इस प्रकारकी मित्रोंकी करुणाभरी पुकारको व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण न सुने, ऐसा कैसे हो सकता है? वे जिस समय भी अपने भक्तपर, प्रेमी पर किसी प्रकारकी भी आपत्ति देखते हैं, तत्काल ही उनकी रक्षाके हेतु अपने प्रिय से प्रिय कार्यको छोड़कर दौड़ पड़ते हैं। उनकी रक्षा करते हैं, प्रेमके अधीन हो विष, अग्नि, किसी का भी ध्यान नहीं रखते।

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ।
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥
(भा. १०।१७।२५)

अपने साथियोंकी विकलता देख जगदीश्वर अनन्त शक्तिधर अनन्त भगवान् उस घोर अग्निको सबके देखते-देखते आकर्षण कर पान कर गये।

उस नई घटनाने गोपोंके हृदयमें आश्चर्य, कोलाहल एवं स्नेह भरी वार्ताओंकी नूतन सृष्टि की और क्षणभरमें ही उनकी आधी रात बीत गई।

प्रातःकाल शीतल-मन्द - सुगन्ध पवनके साथ झूमते हुए प्रसन्नचित्त बन्धु-बान्धवोंसे घिर कर व्रजनाथ विष, सर्प,एवं अग्निपर विजय प्राप्तकर अपने साथियोंकी रक्षाका उल्लास ले व्रजमें पधारे।

इस प्रकार गोपोंके साथ क्रीडा करते हुए वृन्दावन-पन्दशो वृन्दावन ग्रीष्म ऋतुमें भी वसन्तके गुणोंसे भूषित दीखने लगा।

जहाँ-जहाँ और जब-जब श्रीकृष्ण-बलराम अपनी गोपमण्डलीके साथ प्रस्थान करते, विराजते, वहाँ-वहाँ कल-कल निनादकारी मधुर-मधुर झरनोंके शब्दोंसे गर्वभरी झिल्लियोंकी झंकार भी कुंठित हो जाती थी। लहराते स्वच्छ नदी - तालाबके जलसे मिश्रित शीतल कल्हार, और कमलकी परागको हरण करनेवाला पवन, मन्द-मन्द चलता था। पुष्पोंकी सुगन्धि मनको लुभा लेती थी। पशु-पक्षी नाच करते थे। मयूर भँवरे गान गाते थे। कोयल, सारस मधुर स्वरलहरीसे वनको गुञ्जरितकर देते थे। उस समय व्रजराजका मित्र परिवार भी कभी उनका अनुकरण करता था, कभी नाचता, कभी कूदता, कभी युद्ध करता था।

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ।
रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुजुर्जगुः ॥
कृष्णस्यनृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन्।
वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥
(भा. १०।१८।९-१०)

राम कृष्ण आदि सब गोप-प्रवाल, मोर - पिच्छ, गुच्छक, माला, विविध धातुओंके गहने धारण किये कभी नृत्य करते, कभी युद्ध करते थे। जब श्रीकृष्ण नृत्य करते, तो कुछ ग्वालबाल गाते कुछ वंशी बजाते, सींग में स्वर पूरते, कुछ प्रशंसा करते तो और कुछ "वाह वाह" की ध्वनिसे सबको झकझोर देते।

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥
(भा. १०।१८।१२)

कभी कभी काक-पक्ष धारण किये दोनों भाई चकरी खाना, कूदना, फेंकना, ताल ठोकना, खेंचना, बाहु युद्ध करना, आदि अनेक अनूठे-अनूठे खेल खेलते थे।

कभी बिल्वफल, जायफल या आँवलेके फल हाथमें लेकर एक-दूसरे पर फेंकनेसे कभी आंख-मिचोनी,कभी पशु-पक्षियोंके अनुकरणसे, कभी मेंढ़क के समान उछलके, कभी अनेक प्रकारके हास्यसे, कभी झूलोंमें झूलके, कभी नृत्यके सकाम खेलसे, लोक प्रसिद्ध अनेक प्रकारकी क्रीडाएँ करते हुए, वन नदी पर्वतकी गुहाएँ, कुञ्ज, कानन, सरोवरोंके निकट गोपोंके साथ पशुओंको चराते घूमते थे।

एक दिन सभी नित्यकी भाँति घूम ही रहे थे कि राम-कृष्णको हरकर, उनके नाश करनेकी इच्छासे

युक्त हो पापी प्रलंब नामका असुर गोपरूप धारणकर उनकी मण्डलीमें दुषित भावनासे अभिभूत हो खेलने आया। दुष्टदमन श्रीकृष्णने जानकर भी उससे मित्रता करली तथा सभी ग्वालबालोंको वहाँ बुलाकर कहा कि हम ठीक दो झुण्ड बनाकर खेलेंगे। मोहनकी बात सभीको अच्छी लगी। सभीने विचार कर एक झुण्डका नायक श्रीकृष्णको बनाया और दूसरेका बलरामको। इसके पश्चात् राम कृष्णको साथ लेकर सभी गोप एक सुन्दर विशाल भाण्डीरक वटके समीप चले गये।

रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ।
क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप॥
उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलंबो रोहिणीसुतम् ॥

(भा. १०।१८।२३,२४)

खेलका आरम्भ हो गया। हार-जीत होने लगी। एकबार बलरामजीकी ओरके श्रीदामा, वृषभ आदि ग्वालबाल जीत गये। श्रीकृष्णकी मण्डली हार गई। तब कृष्ण आदि उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाकर निर्दिष्ट स्थान पर चले। भगवान् कृष्णने हार मानकर श्रीदामाको अपनी पीठपर उठाया, भद्रसेनने वृषभको और प्रलंबासुरने बलरामजीको उठाया। और सब तो यथा समय यथा स्थान पहुँच गये, परन्तु प्रलंबासुर श्रीकृष्णको बलशाली जान उनसे अलग होकर बलदेवजीको उठाये हुए निश्चित स्थानसे अधिक दूर ले गया। बलदेवजी उसकी करतूतको समझ गये। इससे धीरे-धीरे बलदेवजी पर्वतके समान भारी होने लगे। तब असुर उनके शरीरको उठानेमें असमर्थ होगया और उसने दैत्यरूप धारण कर लिया। बलदेवजीने उसकी दुष्टता देख एक मुष्टिमें ही उसके प्राणोंका विसर्जन कर दिया। इस कार्यसे ग्वालबाल बलदेवजी पर बड़े प्रसन्न हुए।

इसी प्रकार मित्रोंके साथ कृष्णकी एकके अनन्तर दूसरी लीलाएँ चलती रही। ग्रीष्मके बीतनेपर सब जीवोंके लिये सुखद वर्षा आई। आकाशमें श्याम-घटा छागई। दामिनी दमकने लगी। बादलोंमें गड़-गड़ाहटकी ध्वनि होने लगी। सारी व्रजभूमि हरी हो गई। नदी, तालाब, जलसे कूप भर गये। झरने झरने लगे। वन-उपवनोंने नवीन शृङ्गार किया, पशु पक्षियोंने आमोद माना। मानव आह्लादित हुए। ऐसे समयमें भगवान कृष्ण भी वृन्दावनकी छटा निहारने गोप समूहके साथ वनमें पधारे। समय बीतता गया। एक दिन शरद ऋतुने भी अपनी सेना के साथ आगमन किया। उसे भी सभीने देखा।

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः॥
कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।
जगुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्॥

(भा. १०।२१।१, २)

जिस समय भगवान् गायोंको चराते हुए ग्वाल-बालोंके साथ वृन्दावन पधारे, तब शरद ऋतुके कारण जलनिर्मल होगया कमलोंकी सुगन्धि लेकर पवन इधर-उधर डोलने लगा। फूलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंकी पंक्तियों पर मदोन्मत्त भँवरे पक्षियोंके साथ गुञ्जार करने लगे। तालाब और नदियोंने अपूर्व शोभा धारणकी। उस समय बलदाऊ और ग्वालबालों

को साथ लिये गैया चराते हुए भगवान्‌ने त्रिजगत-मनोहारिणी वंशीकी टेर की। सर्वभूत मनोहर उस बासुरीके निनादने सभीको अपने अधीन कर लिया, गोपियोंने बांसुरीके स्वरसे आकृष्ट होकर जिनके गीत गा गा कर अपनेको कृतार्थ किया, जिन्हें पति रूपमें वरण करनेकी भगवतीसे प्रार्थनाकी, गोप मण्डलीने जिसे अपना साथी बना आत्म समर्पण कर दिया—उनके कथनको सर्वस्व माना; श्रीकृष्णने भी उनकी रक्षा ही नहीं की, उन्हें प्रेमदान देकर कृतार्थ किया, जिसके लिये योगीजन सदैव ध्यान धरते रहते हैं—तपस्या करते रहते हैं। उन भगवान् व्रजेन्द्रने मित्र-भावके गोपोंके साथ क्रीडा ही नहीं की अपितु, उन्हें यथावसर उपदेश देकर भी सनाथ किया।

अथ गोपैः परिवृतो भगवान् देवकीसुतः।
वृन्दावनात् गतो दूरं चारयन् गा सहाग्रजः॥
निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः।
आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः॥
हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामान् सुबलार्जुन।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप॥
पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान्।
वातवर्षातिवर्षिमान सहन्तो वारयन्ति न॥
अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः॥

(१०।२२।२९ से ३३)

(क्रमशः)

प्रचार-प्रसंग

झूलन-यात्रा

गत १५ श्रावण, १ अगस्त, बृहस्पतिवार, एकादशीसे प्रारम्भ कर १९ श्रावण, ५ अगस्त, सोमवार, पूर्णिमा तक श्रीगौड़ीय-वेदान्त समितिके सभी मठों में श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजीका झूलनोत्सव विराट समारोहके साथ सुसम्पन्न हुआ है। विशेषकर श्रीधाम नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके नव-निर्मित विशाल मंदिरमें तथा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा में यह उत्सव और भी विशेष समारोहके साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका सभा- मण्डप, हिंडोला, और श्रीमंदिर नाना प्रकारकी आलोकमालाओं, रङ्ग-बिरंगे-वस्त्र, कदली वृक्षों, एवं आम्र-पल्लवोंसे सुशोभित हो रहे थे। नित्यप्रति नयी-नयी झाँकियाँ, विराट संकीर्तन और प्रवचन आदि महोत्सवके मुख्य आकर्षण थे। दर्शकोंकी भीड़ सर्वदा बनी रहती थी। विशेष रूपसे शामको। इस वर्ष श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका झूला श्रीधाम नवद्वीपके लिये सर्वथा एक नयी चीज थी। अतः सारे नवद्वीपकी तथा बाहरकी श्रद्धालु जनता यहाँके झूलनका दर्शन करनेके लिये टूट पड़ती थी। शामके ५ बजेसे रातके ११ बजे तक भीड़को सम्भालना कठिन होता था।

श्रीबलदेवाविर्भाव

गत १६ श्रावण, सोमवार, पूर्णिमाके दिन श्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव-तीथि समितिके समस्त शाखामठोंमें उपवास, कीर्तन और भाषण-प्रवचनके माध्यमसे पालित हुई है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में उक्त दिवस संध्यारतिके पश्चात् एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें त्रिदण्डि स्वामी भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीबलदेव-तत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिया। उन्होंने बतलाया कि जीवके हृदयमें श्रीबलदेवका चिद्बल संचारित नहीं होनेसे श्रीकृष्ण पादपद्मोंके आविर्भावकी सम्भावना नहीं है। श्रीगुरुदेव साक्षात् बलदेवके प्रकाश विग्रह हैं। उनकी कृपासे ही श्रीकृष्णकी कृपा हो सकती है।

श्रीश्रीजन्माष्टमी

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २६ श्रावण, १२ अगस्त सोमवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीकृष्णकी जन्माष्टमीका व्रतोपवास और दूसरे दिन शुक्रवारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सुसम्पन्न हुए हैं।

उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका श्रीमंदिर और सभा-मण्डपको आम्र-पल्लवों, कदलीवृक्षों तथा वन्दनवारोंसे खूब सजाया गया था। मंगलारति और प्रातः कीर्तनके पश्चात् श्रीमद्भागवत पुराण स्कन्धका परायण आरम्भ हुआ, जो मध्यरात्रिमें समाप्त हुआ। इसके अतिरिक्त वृन्दावनके प्रसिद्ध पण्डित श्रीरामप्रसाद गौतमजी, श्रीभागवत पत्रिकाके प्रचार-सम्पादक श्रीहरिदास व्रजवासी और अंतमें त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीमद्भागवतका प्रवचन किया। त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्-भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीकृष्ण तत्त्व, श्रीकृष्णका परतमत्व, श्रीकृष्णाविर्भाव तथा श्रीकृष्णके देवकीनन्दनत्व एवं यशोदानन्दनत्व दोनोंका बड़ा ही हृदयग्राही विवेचन प्रस्तुत किया।

तदनन्तर मध्यरात्रिके समय महानृत्य-संकीर्तन और जय ध्वनिके बीच श्रीकृष्णका आविर्भाव तथा अर्चन-पूजन सम्पन्न हुआ। सबको अनुकल्पका प्रसाद दिया गया।

दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सव भी बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ। निमंत्रित और अनिमंत्रित सभीको श्रीनन्दोत्सवका प्रसाद वितरण किया गया।

—निजस्व सम्वाददाता

श्रीकेदार-बद्रीनारायणकी यात्रा

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ,
चौमाथा, पो० चूचूड़ा (हुगली)
१२ जुलाई ६३

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने इस वर्ष श्रीबदरिकाश्रम परिक्रमा करनेका निश्चय किया है। रास्तेमें हृषिकेश, श्रीनगर, केदारनाथ, तुङ्गनाथ आदि ६४ तीर्थ स्थानोंके दर्शनोंकी व्यवस्था है। आगामी २३ अगस्त १९६३, शुक्रवारको हावड़ा स्टेशनके ६ नं० प्लेटफार्मसे रात ८ बजे ट्रेनसे यात्रा होगी। धर्मप्राण श्रद्धालुजन निम्नलिखित नियमोंके अनुसार योगदान करें।

निवेदक—सम्यवृन्द

नियमावलि—

(१) दोनों समय प्रसाद तथा हावड़ासे हरद्वार आदि और उससे आगे तक जाने-आनेके लिये ट्रेन और मोटर बस आदिका किराया तथा केदार-बद्रीमें कुली-खर्च आदिके लिये प्रत्येक यात्रीको ३००) (तीन सौ रुपया) भिक्षा स्वरूप देना होगा।

(२) यात्रीगण शीतोपयोगी बिछौना (मशहरी), गरम कपड़े, अलमुनियमका एक लोटा, एक थाली कुछ लाजेन्स और तालमिश्री साथ लेंगे। इन सब सामानोंका वजन ५ सेरसे अधिक नहीं होना चाहिए।

(३) ५ सेर से अधिक सामान होनेपर प्रति सेर ३) रुपयाके हरसे कुलीका किराया अतिरिक्त रूपमें देना पड़ेगा।

(४) यात्रियोंको पूरी भिक्षामेंसे १००) आगामी ६ अगस्त तक उपरोक्त पते पर श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजीके निकट जमा करना होगा।

(५) अग्रिम १००) देनेके पश्चात् बाकी रुपये २३ अगस्त शुक्रवारको हावड़ा स्टेशनके नं० ६ प्लेटफार्म पर १ बजे दिनसे ५ बजे शाम तक समितिके अधिकारी वर्गके निकट जमा करना होगा।

(६) पैदल परिक्रमा करनेमें अशक्त यात्रियोंके लिये घोड़ा, डाण्डी, या काण्डीका खर्च अतिरिक्त रूपमें देना पड़ेगा।

(७) स्त्री-पुरुष सभी लोग जूता (चमड़ेका नहीं), छाता, लाठी और बिछौना ढकनेके लिये २ फूट × ५ फूट रबर क्लौथ संगमें लावेंगे।

(८) परिक्रमामें लगभग एकमासका समय लगेगा।

दर्शनीय स्थानोंकी संक्षिप्त तालिका

हरिद्वार, हृषिकेश, लक्ष्मणझूला, व्यासघाट, देवप्रयाग, कीर्त्तिनगर, श्रीनगर, रुद्र-प्रयाग, अगस्तमुनि, गुप्तकाशी, उखीमठ, रामपूर, त्रियुगी नारायण, सोनप्रयाग, मन्दाकिनी, मुण्डकाटा गणेश, गौरीकुण्ड, केदारनाथ, तुंगनाथ, आकाश गंगा, गोपेश्वर, वैतरणीकुण्ड, पिपलकोठी, गरुड़ गंगा, पाताल गंगा, जोशीमठ, पंचशिला, विष्णुप्रयाग, पाण्डुकेश्वर, हनुमान चट्टी, श्रीश्रीबद्रीनारायण, तप्तकुण्ड, वसुधारा, चमौली, नन्द-प्रयाग, आदि-बद्री आदि।